International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

वैदिक काल में कृषि का विकास और महत्त्व

डॉ. राकेश कुमार
इतिहास विभाग

शोध–आलेख सारः भारत प्राचीनकाल से ही कृषि प्रधान देश रहा है। लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि और पशुपालन रहा है। इसके प्रमाण हमें सिंधु घाटी की सभ्यता से मिलते शुरू हो जाते है। खुदाई में अनेक प्रकार के अनाजों के प्रमाण मिलते है। वैदिक काल में भी लोगों का व्यवसाय कृषि और पशुपालन था। ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों से हमें व्यवस्थित ढंग से कृषि और पशुपालन करने के प्रमाण मिलते है। आर्य लोग खेतों की जुताई, बुआई, सिंचाई, कटाई आदि क्रियाओं की बहुत अच्छी तरह से संपन्न करते थे। भूमि के उपजाऊपन के लिए पशुओं की गौरव की खाद का प्रयोग भी करते थे। धीरे–धीरे करके भारत में कृषि का क्रमिक रूप से विकास होता गया।

मूलशब्द : सिंधु घाटी सभ्यता, वैदिक काल, कृषि, ऋग्वेद।

शोध प्रविधिः यह शोध पत्र प्राथमिक और द्वितीयक आकड़ो पर आधारित है इसमें ऐतिहासिक विधि का प्रयोग करते हुए संदर्भ ग्रंथों से सामग्री की व्यवस्थित करते हुए प्रयोग किया गया है।

शोध के उद्देश्यः यह शोध पत्र निम्नलिखित उद्देश्यों पर आधारित है :–

1. वैदिक काल में कृषि के विकास का अध्ययन करना।
2. विभिन्न कृषि क्रियाओं के विषय में जानकारी देना।
3. वैदिक काल में भू–स्वामित्व के विषय में अवलोकन करना।

वैदिक काल में कृषिः प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास लिखने वाले कुछ विद्वानों का मत था कि ऋग्वेदिक काल में ही कृषि का पूर्ण विकास हो गया था। नारायण चन्द्र बन्धोपाध्याय ने अपने मत की पृष्टि में यह तर्क प्रस्तुत किया था कि ऋग्वैदिक आर्यों के लिए बहुवचन में 'कृषि' और 'चर्षणि' शब्द प्रस्तुत किए गए है। उनके अनुसार कृषि ऋग्वैदिक आर्यों का प्रमुख व्यवसाय या इसलिए ऋग्वेद में आर्यों ने वर्षा के लिए अनेक

प्रार्थनाएं की है। तथा साथ में नदियों को भूमि का उपजाऊपन बढ़ाने के लिए भी प्रार्थनाएं की गई है। परन्तु कई विद्धान बंधोपाध्याय के विचार से सहमत नहीं है। उनका कथन है कि कृषि संबंधी अनेक शब्द ऋग्वेद के प्रथम तथा दशम मण्उल में हैं, जो बाद की रचनाएं है। उनके अनुसार ऋग्वेदिक काल के प्रारंभिक चरणों में आर्यों का मुख्य व्यवसाय पशुपालन था और इस काल के अंतिम चरण में ही उन्होंने कृषि पर पर्याप्त ध्यान देना शुरू किया था। समय की दृष्टि से ऋग्वेद के सबसे बाद वाले अंशों से यह प्रकट होता है कि वे बैलों खींचे जाने वाले हलों से खेती करते थे। परवर्ती वैदिक मूल पाठ में जहां व्रात्यों को भूमि पर खेती न करते हुए दिखाया गया है। खेती करना जानते थे, इसमें शक की गुंजाइश नहीं है। इसलिए खेती–किसानी न करने वाले के रूप में व्रात्यों की निंदा का आषय केवल यही है कि अनार्य लोग आर्यों की पद्धति से खेती नहीं करते थे। जोतने, बोने, हंसिया से फसल काटने, दौनी या गहाई करने और फटकने से जुड़ी हुई अनेक गतिविधियों का उल्लेख ऋग्वेद के पहले और दसवें मंडल में आया है। इससे यह संकेत मिलता है कि ऋग्वैदिक काल के अंतिम चरण में कृषि – अर्थव्यवस्था पहले से ज्यादा मजबूत हो गई थी।

चौथे मंडल में एक ही स्थान पर खेती के बारे में इकट्ठे संदर्भ आए है, किंतु यह माना जाता है कि ये सभी परवर्ती प्रक्षेप हैं। ऋग्वेद में आए संदर्भों से यह संकेत भी मिलता है कि आर्यों ने जंगल साफ करने के लिए अग्नि का प्रयोग किया और इस प्रकार भूमि को खेती के योग्य बनाया। ऋग्वैदिक आर्यों के पशुपालन की तुलना में कृषि–कार्य संबंधित भाषायी साक्ष्य निर्बल है। 'कृष्टि' शब्द ऋग्वेद में 33 बार उल्लेखित है, परंतु यह जन के अर्थ के रूप में प्रयुक्त हुआ है। 'व्राज' शब्द के प्रयोग द्वारा भी ऋग्वैदिक लोगों के पशुचारी जीवन का संकेत मिलता है, यद्यपि परवर्ती कालों में 'व्राज' का प्रयोग अधिकतर चरागाहों के अर्थ में किया जाने लगा। अपने विभिन्न रूपों में यह शब्द 45 बार ऋग्वेद में आया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कृषि कवषऐलूष ने द्यूत कर्म की निन्दा करते हुए कहा है – पासों का खेल मत खेलो, खेती करो, जो वित्त उससे प्राप्त हो उसे ही बहुत मानकर भोग करो। ऋग्वैदिक आर्यों ने 'क्षेत्रपति' नाम के एक ऐसे देवता की भी कल्पना कर ली थी, जिसकी कृपा से उनके खेत फलते–फूलते थे, और जिससे वे यह प्रार्थना किया करते

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

थे कि उनके खेत 'सुफल' बने और उनसे उसी प्रकार धन–धान्य का प्रवाह बहता रहे जैसे कि गौसे दूध की धाराएं बहती हैं। क्षेत्रपति देवता की स्तुति में ऋग्वेद में अनेक मंत्र विद्यमान है, जिनका ऋषि वामदेव है। वामदेव द्वारा विरचित इस सूक्त में प्रार्थना की गई है कि हमारे 'फाल' (हल का नुकीला भाग) सुखपूर्वक खेत का कृषण किया करें कीनाष (हलवा है) सुखपूर्वक हल चलाया करें और 'पर्जन्य' (बादल) मधु के समान जल द्वारा हमें सुख पहुंचाएं। ऋग्वेद में कितने ही स्थलों पर खेत जोतने का, हल चलाने का व फसलों से हरे–भरे खेतों का उल्लेख ऋग्वेद में एक और स्थल पर कृषि कार्य का उल्लेख है। जो इस प्रकार है – हलों में बैलों को जोतो, अब हल से भूमि तैयार की गई है, उसमें बीजारोपण करो। हमारी स्तुति के कारण पर्याप्त अन्न प्राप्त होवे। अनाज की फसल अच्छी तरह पके। उपरोक्त मंत्र कदाचित खेत बोने के समय उच्चारित किया जाता था, जब हल से जोतकर व खाद डालकर उसे तैयार कर लिया गया था। इसी प्रकार उत्तर वैदिक काल में भी कृषि व्यवस्था के बारे में काफी बातें मिलती हैं। आर्यजनों के पूर्ण तथा व्यवस्थित हो जाने पर कृषि के महत्व में और वृद्धि होना स्वाभविक था। राजसूर्य यज्ञ में राजा के अभिषेक के अवसर पर पुरोहित राजा को संबोधित करता था हे राजन, यह राज्य तुम्हें कृषि सामान्य कल्याण तथा पोषण के लिए दिया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर स्पष्ट रूप से स्वतः उत्पन्न होने वाली वनस्पति आरण्य औषधि तथा कृषि कर्म द्वारा उत्पादित वनस्पति (ग्राम्य औषधि) में अंतर किया गया है। अथर्ववेद में प्रभूत अन्न प्रदान करने के लिए सीता की प्रार्थना की गयी है। शतपथ ब्राह्मण में खेती की विविध प्रक्रियाओं के लिए कर्षण (जुताई), वन (बुआई), लुनन (कटाई) और मृणन (मंडाई) शब्दों का प्रयोग किया गया है। जब अन्न भूसे से अलग हो जाता था, तो 'तितउ' (छननी या सूप) से उसे छान लिया जाता था। फिर 'ऊर्दर' (वह पात्र जिससे अनाज नापा जाए) से उसे नाप कर सुरक्षा के लिए 'स्थिति' (अनाज जमा करने का कोठा) में रख दिया जाता था। खेत के अधिपति देवता के अस्तित्व में विष्वास किया जाता था जिसे क्षेत्रपति कहते थे उपज में वृद्धि के लिए नभस्पति (मेघों के स्वामी) की स्तुति की जाती थी। एक स्थान पर कृषि को हानि पहुंचाने वाले विविध कीटों के विनाश के लिए अश्विनों का आह्वान किया गया है। धान्दोग्य उपनिषद में अन्न के महत्व पर बल दिया गया है। इस ग्रंथ से यह पता चलता है

कि लोगों का नक्षत्रों का ज्ञान भी था। ऋग्वैदिक समाज जहां पशुचारी था, वहीं उतरवैदिक समाज कृषि व्यवस्था की तरफ अग्रसर हो चुका था। इस युग में अनुष्ठानों का उद्देश्य था राजा द्वारा कृषकों तथा समुदाय के अन्य व्यक्तियों पर प्रभुत्व स्थापित करना था। शतपथ ब्राह्मण के कुछ उल्लेख स्पष्ट करते हैं कि यद्यपि अभिजात या योद्धा उसी नातेदारी समुदाय के सदस्य थे और 'विष' या समुदाय से ही उनका उत्थान हुआ था?

हल का प्रयोगः ऋग्वेद के प्रथम मंडल में कहा गया है कि अश्विन देवताओं ने मनु को हल चलाना और जो कि खेती करना सिखाया था। दसवें मंडल में जंगल काटने, भूमि जोत कर बीज बोने, हंसिया से फसल काटने, छाज से भूसा निकालने का अलग से वर्णन है। ऋग्वेद में 'हल' के लिये 'लाणडल' या 'सीट' शब्द मिलते हैं। चौथे मंडल में 'हल' या 'फाल' का वर्णन भी मिलता है हल द्वारा निकाली गई रेखायें 'सीता' कही गई है। संभावना है कि भूमि जोतने के लिये लकड़ी के फालों का प्रयोग होता था?

संभवतः यह लकड़ी गुलर, उदम्बर या खेर की लकड़ी होती थी। इस काल में हल चलाने वाले को 'कीनाष' कहते थे। हल चलाने से खेत में जो मिट्टी खुद जाती थी तथा उसकी कतार बनती जाती थी, उसे 'सीता' कहते थे। हल का जुआ बैलों की जोही पर रखा जाता था। उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में चार, छह, आठ, बारह और यहां तक कि चौबीस बैलों द्वारा खीचे जाने वाले हल के उल्लेख हैं। जो इस बात के द्योतक है कि कठोर भूमि को जोतने के लिए दो से अधिक बैलों को लगाया जाता था। क्षेत्र कृषि के महत्व को समझा जाने लगा था तथा खदिर के हल के फाल से प्रार्थना की जाती थी कि वह लोगों को गाएं, बकरी, बच्चे तथा अनाज प्रदान करें। ऐसा प्रतीत होता है कि खदिर अथवा खैर का बना हल का फल पर्याप्त सीमा तक प्रयोग किया जाता था। शतपथ ब्राह्मण में इसे बहुत कठोर कहा गया है तथा इसकी तुलना हड्डियों से की गई है। परन्तु कुछ उत्तर वैदिक ग्रंथों में हल को परिखेत। अथवा पवरिवम कहा गया है, जिसकी व्याख्या बल्लम के समान धातु के फाल से युक्त हल के रूप में की गई है। यह संभवतः लोहे का फाल था। इसी प्रकार से, वेद मंत्रों के उच्चारण में धातु अथवा लकड़ी के बने कुषी नामक उपकरण का प्रयोग चिन्ह लगाने के लिए किया जाता था। परवर्ती कालों में यह शब्द हल के लोह निर्मित फाल का द्योतक बन गया और पष्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब

की बोलियों में इसका प्रयोग अब भी इसी अर्थ में होता है। परन्तु अब तक केवल एक ही लोहे का बना हल का फाल (अतरंजी खेड़ा से) चित्रित धूसर मृदमांड के बाद के स्तरों से प्राप्त होता है। ऋग्वैदिक काल में खदिर तथा उदुम्बर के बने हल के फालों का उपयोग होता था। उत्तर वैदिक काल तक यह परम्परा चलती रही और बनारस के क्षेत्र में यह अनुष्ठान आज भी प्रचलित है। इस अनुष्ठान के अंर्तगत जोतने की प्रक्रिया को प्रारम्भ करने से पूर्व लकड़ी के फाल से युक्त हल से एक छोटे खेत में रेखाएं अंकित की जाती थी।

(ख) अन्य कृषि–उपकरण: हल के अतिरिक्त कृषि में अन्य उपकरणों का भी प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद में कुदाल (खनिज), दरात (दात्र) व सृणि तथा कुल्हाड़ी का उपयोग कृषि–प्रक्रिया में किया जाता था। कुदाल जमीन को खोदने में काम आता था, दरांती से फसल को काटा जाता था तथा कुल्हाड़ी से जमीन को साफ कर उसे समतल बनाकर उस पर कृषि की जाती थी। इसके अतिरिक्त हंसिया, चलनी और छाज का उपयोग भी विभिन्न कृषि प्रक्रियाओं में किया जाता था। अनाज नापने के लिए अदिर नाम का बर्तन काम में लाया जाता था। उत्तर वैदिक काल में भी इन्हीं सब उपकरणों का प्रयोग कृषि में किया जाता था। अतरंजी खेड़ा से प्राप्त कुछ उपकरण कटाई में प्रयुक्त होने वाले हंसिया के समान दिखाई देते हैं। दात्र शब्द ऋग्वेद के परवर्ती भागों में प्राप्त होता है इसे एक और रीपर तथा सामान्य कटाई के निमित्त हंसिया इन दोनों अर्थों में इसका प्रयोग किया गया है। इससे व्युत्पन्न दा दाऊ आदि का उत्तर पूर्वी भारत में अर्थ है कृषि में प्रयुक्त एक बड़ा काटने वाला उपकरण। परंतु हरियाणा, उत्तर प्रदेष के क्षेत्रों में इससे व्युत्पन्न दाराती शब्द का अर्थ है फसल कटाई में प्रयुक्त हंसिया। श्रेणी फसल कटाई के लिए प्रयुक्त हासिया के लिए एक अन्य शब्द का अधिक प्रयोग नहीं होता था। यह महत्वपूर्ण है कि उत्तर वैदिक साहित्य में कटाई के लिए प्रयुक्त हंसिया अथवा फसल काटने के अर्थों में 'लवित्त' शब्द का प्रमुख रूप से प्रयोग किया गया है। परंतु हमें यह स्पष्ट नहीं होता कि हंसिया किस चीज का बना होता था।

(ग) सिंचाई के साधन: ऋग्वेद के एक मंत्र में जल दो प्रकार के कहे गए है, खनित्रिमा और स्वयंजा खनित्रिमा वह जल होता था, जिसे खोद कर प्राप्त किया जाए,

जैसे कुएं का जल। नदी, नालों, स्त्रोतों, वर्षा आदि के जल को स्वयंजा कहते थे। ऋग्वेद के एक मंत्र में कुओं से खेती की सिंचाई का उल्लेख है। नालियों के मध्यम से पानी खेतों में पहुंचाया जाता था। अथर्ववेद में हमें सिंचाई के लिए नहर खोदने का भी उल्लेख मिलता है। कौषिकी सूत्र में उस धार्मिक क्रिया का उल्लेख मिलता है। जिसके बाद नहर से पानी खेतों में छोड़ा जाता था। ऋग्वेद में उल्लेख आता है कि किसान अपने खेतों की सिंचाई करते थे व आवाज करके बोये हुए बीजों को खाने वाले पक्षियों को उड़ाते थे। 'कूप' शब्द कुएं के अर्थों में ही प्रयुक्त हुआ है। इन कुओं के लिए कहा गया है कि उनमें पानी कभी कम नहीं होता था व वे हमेशा पानी से भरे रहते थे। पानी पत्थर के चक्र से खींचा जाता था जिससे रस्सी द्वारा बाल्टी बंधी रहती थी। यह बड़ी–बड़ी नालियों द्वारा खेतों में पहुंचाया जाता था। ऋग्वेद में 'खनिमित्रा आपः' (खोद कर निकाला हुआ पानी) का उल्लेख आता है जिससे सिंचाई के लिए उपयुक्त वर्षा पर निर्भर रहने के साथ–साथ कृत्रिम सिंचाई के साधनों का प्रयोग भी करते थे।

(क) प्रमुख फसलेः ऋग्वेद के काल में 'यव' अथवा जौ उत्पन्न किया जाता था। जौ शीघ्र पकता है और इसकी कृषि में अधिक वर्षा की आवष्यकता नहीं होती। लोगों का पूर्णतया इसी अनाज पर आधारित होना इस बात का संकेत देता है कि अन्य फसलों के बारे में कई जानकारी ने होने के परिणामस्वरूप उनका जीवन अभावपूर्ण था। अंरंजीखेडा में चित्रित धूसर मृदमांड स्तरों से जौ के अतिरिक्त चावल और गेहूँ भी प्राप्त हुए हैं। इनका समर्थन उत्तर वैदिक ग्रंथ भी करते हैं, जिन्हें जौ, चावल (व्रीहि) उडद (माष) तथा लि (लि) का ज्ञान था। बाजरे (स्यामक) का भी उल्लेख प्राप्त होता है। उत्तर वैदिक ग्रंथों में साठ दिन में पकने वाली धान की फसल का नाम 'षष्टिक' प्राप्त होता है। यह तथ्य कि हिंदू अनुष्ठानों में अन्य प्रकार के चावलों के स्थान पर इसी चावल का प्रयोग होता है, प्रकट करता है कि कृषि से उत्पन्न प्राचीनतम चावल का प्रकार था। चि.धू.मृ. स्तरों से प्राप्त 'गोधूम' अथवा गेहूँ अनेक उत्तर वैदिक ग्रन्थों में उल्लिखित है परन्तु जहां उड़द, तिल और बाजरे का प्रष्न है ये चि.धू.मृ. स्तरों से प्राप्त नहीं हुए है। परन्तु मध्यप्रदेष में ताम्रपाषाण कालीन स्तरों से गेहूँ, जौ तथा चावल के अतिरिक्त मसूर, उड़द, मूंग, खेसारी तथा अलसी के भी प्रमाण मिले है। पश्चिम उत्तर प्रदेश धान की खेती की व्याख्या इस बात से होती है

कि वर्षा बहुत अधिक होती थी और खेतों में पानी भर जाता था। यगो द्वारा इन्द्र देव की वर्षा के लिए स्तुती की जाती थी। यजुर्वेद की संहिताओं में प्रियगु अणु, श्यामाक, नीवार, आंब, उड़द, मूंग, मसूर आदि का उल्लेख मिलता है। बेर की तीन किस्मों, बदर, बेला, आम आंवला आदि का उल्लेख भी मिलता है। शाकों में ककड़ी, कमल ककड़ी, लौकी और सिंघाड़ा का भी वर्णन मिलता है। उत्तरवैदिक ग्रंथो में राई, नींबू और हल्दी मिर्च का भी उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में इक्षु (ईख) का भी उल्लेख मिलता है।

खाद का प्रयोगः वैदिक काल में कृषि को उपजाऊ बनाने के लिए खाद का प्रयोग किया जाता था। गाय के गोबर को खाद के रूप में प्रयोग किया जाता था। चूहे के मल को भी खाद के रूप में प्रयोग किया जाता था। अथर्ववेद में भी पशुओं के गोबर की खाद के प्रयोग के संकेत मिलते है। रासायनिक खाद के प्रयोग का कोई संकेत नहीं मिलता।

भूमि का स्वामित्त्वः कृषि पशु पालन की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण थी। भूमि के व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में वास्तविक परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थी। यद्यपि उर्वराजित, उर्वरा, क्षेत्रसात आदि प्रकट करते है कि कृषि योग्य खेत युद्ध का कारण बनते थे लेकिन ऐसे उदाहरण कम ही मिलते है वैदिक इंडेक्स के लेखकों का विचार है क्षेत्र का अर्थ – निजी खेत है। परंतु इसका सामान्य अर्थ कृषि योग्य भ्झूमि है। इस प्रकार की भूमि आवष्यक रूप से व्यक्तिगत स्वामित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता। गायों, बैलों, घोड़ो आदि की भेटों की सूचना मिलती है किन्तु भूमि की भेंट की नहीं। राजा को भी भूमि के संरक्षक के रूप में प्रदर्षित नहीं किया गया है। अतः भूमि पर गोत्र का सामूहिक स्वामित्व इस अवस्था में प्रचलित रहा होगा। उत्तर वैदिक काल इस परम्परा की निरंतरता का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार गोत्र अथवा विष की अनुमति के बिना भूमि नहीं दी जा सकती थी। परवर्ती कालों में भी जब पितृसत्तात्मक परिवार भूमि के स्वामी होने लगे थे, विधि ग्रन्थों में बिक्री अथवा अन्य साधनों द्वारा स्वामित्व परिवर्तन के संदर्भ में नातेदारी के सदस्यों को अजनबी व्यक्तियों की अपेक्षा वरीयता प्रदान की जाती थी। इस प्रकार वैदिक युगीव आर्यों के जीवन में कृषि का अतीव महत्व था। राजतिलक के समय राजसूय यज्ञ में पुरोहित मनोनीत राजा की सत्ता की घोषणा करते हुए लोगों से कहता था, हे राजा! यह

राज्य तुम्हें कृषि कार्य (कृष्यै) लोगों की भलाई (क्षेमाय) समृद्धि और उन्नति (पोषय) के लिए दिया जाता हैं। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट कहा गया है कि कृषि ही वास्तव में भोजन है।

कृषि की सफलता के लिए वैदिक समाज में इन्द्र, पूजन, सुनः सीर, सीता आदि अनेक देवी–देवताओं की आराधना की जाती थी। शतपथ में बैलों को हल में जोतने, बीज बोने तथा नये अन्न को पहली बार गृहण करने के अवसरों पर नाना प्रकार के अनुष्ठानों का विधान किया गया है। फसलों की सिंचाई के लिए वर्षा हेतु (घौ) और पृथ्वी की स्तुति की गई है अन्न अच्छी प्रकार उगे, इस भावना से पृथ्वी माता की पूजा अर्चना का उल्लेख भी प्राप्त होता है। कृषक फसल पक जाने पर उसको संग्रह करते समय देवी–देवताओं के प्रति श्रद्धा स्वरूप कुछ अंष वहीं छोड़ देता था। कृषि से संबंधित इन धार्मिक अनुष्ठानों के पीछे दो भावनाएँ प्रमुख थी प्रथम वह जिसमें प्रकृति के प्रकोप से फसलों की रक्षा हेतु देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयास करता था, दूसरी वह जिसमें धान्य संचय के समय कृतज्ञता प्रकट करने के लिए वह देवताओं को बलि प्रदान करता था इसके अतिरिक्त देवी प्रकोप से बचने के लिए वह प्रार्थनाएं भी करता था।

निष्कर्षः प्रस्तुत शोध पत्र में हमने वैदिककाल में कृषि के विकास का अध्ययन किया है। इस शोध पत्र में हमें ऋग्वैदिक और उत्तरवैदिक कालीन आर्यो द्वारा की जाने वाली विभिन्न कृषि क्रियाओं के बारे में जानकारी मिलती है। आर्यो की वैदिक काल में जुताई, बुआई, सिंचाई और मड़ाई आदि कृषि क्रियाओं की जानकारी मिलती है। भू–स्वामित्व के विषय में भी जानकारी मिलती है।

संदर्भ सूचीः

1. राय चौधरी, एच.सी., पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एषियट इंडिया, पृ. 21 व 64।
2. आर.सी. मजुमदार एवं ए.डी. पुसालकर (संपा) दे वैदिक एज, पृ. 257।
3. बंधोपाध्याय, एन.सी. इकोनॉमिकल लाइफ एंड प्रोग्रे इन एंषियट इंडिया, पृ. 126।
4. कृष्ण मोहन श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 123।
5. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास, पृ. 134।
6. ए. वैदिक वर्ड – कान्कडिन्स, जि. 1, भाग–5, पृ. 2990–1।
7. बसु, इंडो, आर्यन पॉलिटी, पृ. 82–85।

8. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 112।
9. जागीराज बसु, इण्डिया ऑफ द एज ऑफ द ब्राह्मणाज, पृ. 115–116।
10. ऋग्वेद, 8.24.27।
11. वही, 2.41.16।
12. वही, 7.36.6।
13. ऐतेरय ब्राह्मण, 7.18।
14. शतपथ ब्राह्मण, 1.5.6.3।
15. अथर्ववेद, 3.17।
16. तैत्तिरीया संहिता, 2.2.11.2।